लोकमान्य तिलक के राजनीतिक विचार

यदि तिलक न होते तो भारत अभी पेट के बल सरक रहा होतासिर धूल में दबा होता और उसके हाथ में दर्खास्त होती। तिलक ने भारत की पीठ को बलिष्ट बनाया है। विश्वास है कि देश अब सीधा होकर चलने लगेगा और तब देश उस व्यक्ति को आशीर्वाद देगा जिसने धूल में से उठाकर उसे खड़ा किया। विश्व यात्री संत निहाल सिंह ने यह शब्द उस योद्धा के विषय में कहे थे जिस ने मृत्यु से पूर्व मूर्छा की अवस्था में कहा था, "यदि स्वराज ना मिला तो भारत समृद्ध नहीं हो सकता स्वराज्य हमारे अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।" भारत के अस्तित्व की चिंता करने वाले इस महान सपूत ने गणपति महोत्सव तथा शिवाजी जयंती क का आयोजन कर के सांस्कृतिक जीवन में जिस नव चेतना के अंकुर प्रस्फुटित किए थे उससे देश में स्वाभिमान और संगठन की भावना बलिदान और संपूर्ण का नारा प्रारंभ हो गया हो गया। इस महान यात्री के की प्रेरक शक्तियों के विषय में जानना आवश्यक हो जाता है।

प्रेरक स्रोत:- लोकमान तिलक के संपूर्ण जीवन को दो महान शक्तियों ने प्रेरित किया। प्रथम था भारतीय इतिहास तथा द्वितीय प्रेरक सकती थी, भारतीय संस्कृति को जिन ब्रिटिश लेखकों ने लिखा था उन्होंने निष्पक्ष होकर भारतीय इतिहास की पुण्य आत्माओं की विवेचना नहीं की थी। अंग्रेज इतिहास लेखक ग्रांड डफ और उसके हमजोलियों ने अफजल खा के बाद की घटना को ऐसे रीति से चिन्हित किया था। जिससे शिवाजी छल प्रयोग और हत्या के दोषी सिद्ध हो पढ़े-लिखे समाज ने भी उनका यही स्वरूप चयनित होने लगा। शिवाजी ने राष्ट्र के जीवन को जिस कुशाग्र बुद्धि से संगठित किया था। वह तिलक के लिए अपूर्व प्रेरणा का विषय बन गया। 30 मई सन 1895 को मुंबई में शिवाजी उत्सव मनाने के लिए विशेष सभा हुई। वैशाख सुदी 2 के दिन राम रायगढ़ के किले में शिवाजी महोत्सव मनाया गया। 6 अप्रैल सन 1896 को इस उत्सव में शासन ने कुछ अवरोध पैदा

किए किंतु तिलक के व्यक्तित्व ने इस उत्सव को निर्विघ्न बना दिया। उन्होंने इसी स्तर पर अन्य आयोजन किए। तिलक सामाजिक एकता के सूत्रधार थे। उन्होंने गणपति उत्सव को सन 1894 में इतने विशाल आधार पर मनाया कि महाराष्ट्र इतिहास में यह अवसर स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया। इस उत्सव के पीछे सामाजिकता और एकता के विचार सुखरित थे। लोकमान्य ने सामाजिक और नैतिक दृष्टि से इस आयोजन की उपयोगिता को प्रदर्शित कर दिया। गणपति उत्सव पर लोकमान्य को मूर्तिपूजक सनातनी और रूढ़िवादी कहा गया- वस्तुस्थिति यह थी कि लोकमान्य ने प्राचीन संस्कृति के अस्थिर पंजर में मांस और रुधिर का संचार किया। उन्होंने इस आयोजन से जोशीले संप्रदायिक मुसलमानों को इससे मूक बना दिया। अंग्रेज अधिकारियों ने इस आयोजन को तिलक की राजनीतिक उपलब्धि तथा कोरी शरारत बताया। वस्तुतःवह हिंदू धर्म पर अगाध आस्था रखते। धर्म उनके लिए प्रेरणा स्रोत था। उन्होंने गणपति उत्सव मना कर जाति को अमर शक्ति और बल प्रदान किया।

'दि आर्कटिक ऑफ दी वेदाज' ग्रंथ के विचारक को इतिहास के महापुरुषों ने ही प्रभावित नहीं किया बल्कि भारतीय संस्कृति के उन नायकों ने भी उन्हें समान रूप से प्रभावित किया है। इस प्रभाव का स्पष्ट दर्शन उनके मांडले जेल के समय गीता रहस्य की रचना से मिलता है। उन्होंने गीता में कर्मयोग की दीक्षा दी। हिंदुत्व के भीतर प्रविष्ट जिस कालकूट को किसी भी तत्वचिन्तक तक की दृष्टि नहीं देख सकी थी, उसे तिलक की आंखों ने देख लिया। तिलक जी ने उसे केवल देखा ही नहीं सत्य अपनी प्रखर बुद्धि से उसे उन्हें दूर ही कर दिया। इसलिए मत है कि गीता एक बार तो भगवान श्री कृष्ण के मुख से कही गई किंतु दूसरी बार उसका सच्चा आख्यान लोकमान्य तिलक ने किया। इन दोनों के बअन्य सारी टिकाए और व्याख्या गीता के सत्य पर केवल बादल बनकर छाती रही है। तिलक यदि राजनीति के सक्रिय अंग न बनते तब संभवत वह महान विचारकों की श्रेणी में अपने को रखने में पूरी तरह सफल होते। लोकमान्य दी राजनीति में प्रवेश ना

करते तो उनकी निसंदेह संसार के अन्यतम महान विचारकों और पंडितों में गणना होती, क्योंकि तब वह अपनी स्वाभाविक प्रतिभा को पूरी तरह शास्त्रीय दिशा में लगा सकते। वस्तुतः उन्होंने देश को कर्मियों की शिक्षा देकर सुषुप्त अवस्था से जागृत अवस्था में ला दिया था। उनकी प्रेरणा राष्ट्रीय जीवन की अमूल्य निधि के रूप में स्वीकार की गई।

उग्रवाद के प्रतिनिधि :-तिलक आराम कुर्सी पर बैठने वाले सुधारक नहीं थी वह जनता के लिए तथा जनता के कार्यकर्ता थे। उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन के उदाहरण से यह सिद्ध कर दिया कि साहस तथा आत्मबलिदान से देश में नई चेतना आ सकती है। यह सही है कि उन्होंने मृत प्रायः जाति को संघर्ष करने की प्रेरणा दी और इस संघर्ष से एक नई जाति का उदय हुआ। एक नए युग का आरंभ हुआ कोरे आदर्शवाद से उनका संपर्क नहीं था। उन्होंने व्यवहारिक विषयों पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से चिंतन किया। उनका चिंतन उनके कार्यों का आधार बना, "उनमें अपनी मराठा जाति के तेज संस्कार थे। शक्तिशाली मस्तिष्क, शक्तिशाली शास्त्र था, जिससे वह महान मुगल साम्राज्य के खिलाफ लड़े। यदि उस समय भारत की जनता में राजनीतिक चेतना प्राप्त पर्याप्त मात्रा में होती तो वह क्रॉमवेल के समान देश के सफल नायक होते।" इस महान व्यक्ति की महान सफलता का परिचायक है कि बंगाल विभाजन पर देश आक्रोश में भड़क उठा विवश होकर अंग्रेजों ने इस विभाजन को समाप्त करना पड़ा। उन्होंने अपने विचारों को और कार्यो के कारण अपने समकालीन राजनीतिज्ञ से कहीं अधिक कष्ट झेले हैं, लेकिन सभी परिस्थितियों में उन्होंने भारत के लिए स्वतंत्रता के झंडे को ऊंचा ही रखा।

जिस समय भारत के अधिकांश राजनीतिक आराम कुर्सी पर बैठकर अंग्रेजों की न्यायप्रियता के पक्ष में भाषण दे रहे थे। उस समय स्वराज और स्वाधीनता की

मांग करने वाले यशस्वी वीर को राजद्रोह के लिए दंड भोगना पड़ा था। तिलक अपने देश के तथा उसके लोगों के लिए उबलता हुआ प्रेम हृदय में लेकर पैदा हुए। तिलक की राजनीति जैसे को तैसे की राजनीति थी। तिलक ने स्पष्ट किया कि भारत की प्रगति तथा ब्रिटिश शासन दोनों बेमेल है। शासक और शासित के बीच विभेद कठिनता से दूर होने वाले हैं। राजनीतिक संघर्ष प्रथम है। राजनीतिक सुधार तक कठिन है जब तक शक्ति औपनिवेशिक शासकों के हाथ में है। अंतिम रूप से राजनीतिक संघर्ष का उद्देश्य भारतीयों द्वारा शक्ति को प्राप्त करना है तिलक के जीवन का इतिहास अपने पूर्वज तथा समकालीन उदारवादियों के जीवन इतिहास से सर्वथा भिन्न है तिलक ने प्रस्ताव और प्रार्थनाओं को राजनीति को पूरी तरह से सन्यास दिला दिया था। विशाल जनसमूह को उसकी कठिनाइयों से अवगत कराकर उन्हें दूर करने के लिए स्वाधीनता का मंत्र दिया।

तिलक से पूर्व निर्भयता से अपनी बात को कहने का साहस राजनीति में देखने को कठिनाई से ही मिलेगा। उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था कि देश में एक प्रबुद्ध और जागरूक राजनीतिक चेतना का उद्भव हुआ। उन्होंने स्वराज्य की बात कह कर स्वराज्य को बहुत पास ला दिया। “स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे प्राप्त करके रहूंगा।“ इस उद्घोषक ने संपूर्ण भारत में भावात्मक गूंज भर दी। उनकी दृष्टिकोण ने बहुत से उदार वादियों के हृदय में संदेह पैदा कर दिया रानाडे तथा बाद में गोखले और सुरेंद्र नाथ बनर्जी ने ना केवल उनकी भाषा की हिंसा को न केवल चेतावनी के रूप में स्वीकार किया । बल्कि वह संदेह करने लगे कि जैसे वह प्रथम ब्राह्मण के रूप में, द्वितीय एक मराठा के रूप में बोलते हुए सोचते हैं, तथा बाद में वह अकस्मात ऐसे मनुष्य के रूप में कल्पना करते है। जो भावी भारत को संगठित देखना चाहता है। इस धारणा ने ही लोकमान्य को जनमानस के निकट लाकर उग्रवाद का प्रतिनिधि बना दिया। उन्होंने सरकार से याचना के रूप में कभी कुछ स्वीकार नहीं किया। अपने पत्रों के माध्यम से उन्होंने जनजीवन को पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए चेतनामय कर दिया। सन 196

का दुर्भिक्ष और सन 1897 में प्लेग के प्रभाव से दुखी होकर उन्होंने जहां एक तरफ सरकार की आलोचना की है वहीं दूसरी तरफ उन्होंने रचनात्मक सहयोग देकर नए विश्वासों को स्थापित किया।

(भाग1)